17 सितम्बर 1997

साहित्य अकादेमी

इंडिया इंटरनेशनल सेंटर

लेखक से भेंट

कृष्ण बलदेव वैद

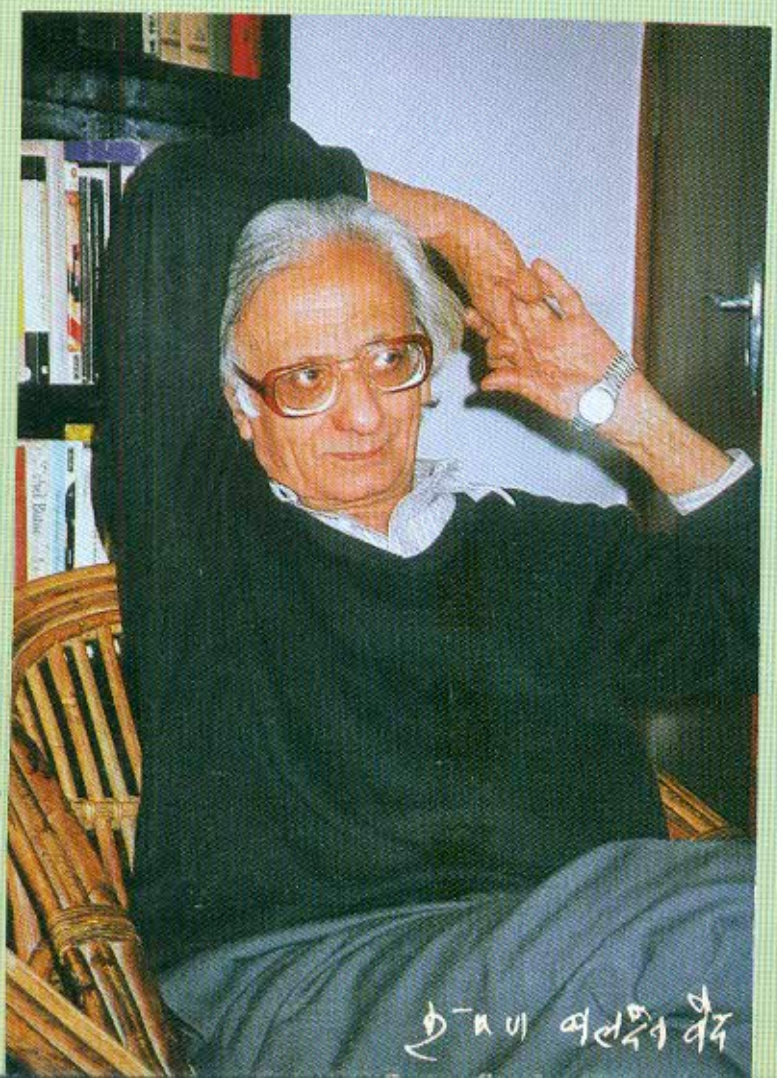

आधुनिक हिन्दी लेखकों की पहली पंक्ति में सबसे अलग और कदाचित् सबसे विवादास्पद कथाकार के रूप में एक जाना-पहचाना नाम है—श्री कृष्ण बलदेव वैद का। अथक और अनवरत रचनाधर्मिता, साहित्य लेखन और दृष्टि की जीवन्तता ने उनकी कृतियों को हमेशा एक विशिष्ट आयाम और रचनात्मक विस्तार प्रदान किया है। अपनी कृतियों में वैद ने कई-कई बार अपनी ही बनी-बनाई मूर्तियों को दण्डित और अनावश्यक मान-मूल्यों को खण्डित किया है। ज़रूरत पड़ते पर उन्होंने दोबारा इनमें नई अर्थवत्ता ढूँढ़ने की कोशिश भी की है। प्रश्नों एवं प्रसंगों के अनुरूप उनकी कथा पात्राएँ और पात्र नई शक्लें और सूरतें अख़्तियार करते रहते हैं।

आज से लगभग चालीस साल पहले वैद की पहली औपन्यासिक कृति *उसका बचपन* (1957) इसी बड़ी तैयारी की पहली दिलचस्प कोशिश थी। अपने रचनाकार को बड़ी निर्ममता और निस्संगता से अपने से दूर हटाने की इस ईमानदार कोशिश ने श्री वैद को अपने उन समकालीन कथाकारों से पहली ही नज़र में अलग कर दिया जो आधुनिक और विशिष्ट होने के अतिरिक्त दंभ में आत्मरति और अहम्मन्यता के शिकार हो गए थे। निस्सन्देह, पश्चिमी साहित्य के अध्ययन, अध्यापन और बाद में पश्चिमी जगत की धड़कनों को एकदम क़रीब से सुनने और पकड़ने की तैयारी और सुविधाओं ने उन्हें अपने समकालीनों में भी अगली पीढ़ी का रचनाकार बना दिया।

बीच का दरवाज़ा (1963) और *मेरा दुश्मन* (1966) की कुछ कहानियाँ भी पाठकों को बेहद चौंकानेवाली थी। कथानायिका को अक्सर देवी और कथानायकों को अमूनन फ़रिश्ता माननेवाले पाठकों का इन कहानियों को पढ़कर विचलित होना स्वाभाविक ही था—जब ऐसी बनी-बनाई मूर्तियों को बार-बार ढहाया जाता रहे। लेकिन पाठकों को यह भी महसूस होता रहा कि जीवन के ऐसे कई कोने-अँतरे की—जो कभी-कभी धुरी बन जाते हैं—अनदेखी या उपेक्षा क्योंकर होती रही है? कभी-कभी क़िस्सागोई के बहाने भी कोई रचना जीवन की सार्थक आलोचना बन जाती है—इसे वैद ने हर बार साबित कर दिखाया है। कुछ आलोचकों के अनुसार, एक आम हिन्दी पाठक के लिए उनके लेखन की बहुतलस्पर्शिता, संश्लिष्टता या वैचारिक जटिलता को झेल पाना इसलिए भी मुश्किल होता रहा है क्योंकि ऐसे पाठक बने-बनाए ढाँचे और मान-मूल्यों की वकालत करते रहनेवाली कृतियों की ही निष्ठापूर्वक पाठ-परिक्रमा करते रहते हैं। उनके लिए यह जानना और मानना मुमकिन नहीं होता कि बीसवीं सदी के ताप, तनाव और संत्रास ने ही हमें तोड़ा-मोड़ा-झिंझोड़ा और बिगाड़ा नहीं है—हम खुद इसके लिए नैतिक रूप से ज़िम्मेदार हैं। लेकिन श्री वैद इस तरह का कोई फ़ैसला या फ़तवा नहीं देते—उनकी इबारतों में हमारी सदाबहार त्रासदी या हमारी टूटी-फूटी नियति को पहले से ही बाँचा जा सकता है।

वैद का एक बेहद चर्चित, दूसरे शब्दों में अविश्वसनीयता की हद तक बहुचर्चित उपन्यास, *बिमल उर्फ़ जायें तो जायें कहाँ* (1974) पढ़ते हुए हमारा साबक़ा एक ऐसी अंधी सुरंग से होता है—जिसे हम खुद खोदते रहे हैं। इसमें वर्णित हर पात्र, किसी सुर्ख़ी या चिंगारी की तरह उभरता- उछलता और फिर इसकी बीहड़ कथा-यात्रा में कुछ दूर तक चलकर किसी तिलिस्मी स्याही में डूब जाता है।

पत्नी श्रीमती चम्पा के साथ श्री वैद

सर्वश्री दयाकृष्ण और जे. स्वामिनाथन के साथ श्री वैद

बिमल उर्फ़... का हमसफ़र भी एक अनाम परछाई ही है—जो हमेशा साथ चलने का वहम बनाए रखती है। कथाकार वैद ने इस कृति में मनुष्य के मन की अनेक गुत्थियों, ग्रंथियों और गुंझलों के साथ, व्यक्ति की प्रकृत या आदिम प्रवृत्तियों का खुलासा करने का जोख़िम भी उठाया था, जो रेशे-रेशे खोलने के बावजूद हमारी पकड़ में नहीं आतीं। उल्टे...हम उनकी गिरफ़्त या शिकंजे में फँसे रहते हैं। प्रसंगानुसार अश्लील और अनैतिक या बेजा जान पड़नेवाली हरकतों और बयानों के साथ ही, उनकी पात्रता को विश्वसनीय और मुकम्मल बनाया जा सकता है। ऐसे पात्रों के संसार में निरन्तर प्रौढ़ लेकिन अकेले पड़ जाने वाले कुछ-एक पात्र को वैद ने अपने विपुल और विस्तृत अनुभव-जगत से गढ़ा था—इसलिए ऐसे पात्र अपनी कोई-न-कोई भूमि और भूमिका ढूँढ़ ही लेते हैं। उनकी जय-पराजय, द्वंद्व-दंश, ताप-अनुताप, हर्ष-विषाद और तृषा एवं मृषा की तूलिका एक पल के लिए पानी में कोई लकीर खींचती है तो दूसरे पल कोई तस्वीर खींचकर मिटा देती है।

"'बिमल' और उसके सर्जक तथा 'बिमल' और उसके पाठकों के बीच निरन्तर सम्वाद के माध्यम से और उपन्यासकार की सर्वांगीण विडम्बनासम्पन्न दृष्टि के माध्यम से न केवल एक युवा पीढ़ी की घुटन, आक्रोशमिश्रित हताशा और छटपटाहट का निर्भीक चित्रण किया गया है बल्कि यथार्थवादग्रस्त उपन्यास की ख़ामियों की गहरी औपन्यासिक आलोचना भी की गई है। उपन्यास में अनेक स्थलों पर उपन्यास विधा में नवाचार की संभावनाओं पर अतिरोचक बहसें हैं और अनेक प्रचलित शैलियों की पैरोडीज़ (parodies) भी।"

सशक्त कथानक, बेबाक बयान और बेलौस विवरण के साथ यौन सम्बन्धों का खुलासा करने वाली इस 'बोल्ड' कृति को प्रकाशकों ने तब छापने से इनकार कर दिया था। लेकिन बाद में इसी उपन्यास ने अपने पाठकों को न केवल झकझोर कर रख दिया था—बल्कि अब भी वह नई पीढ़ी के पाठकों को विचलित करने में समर्थ है। आज से तक़रीबन पच्चीस साल पहले लिखा गया यह उपन्यास लेखकों और मित्रों को अपनी उत्तेजक उपस्थिति से चमत्कृत कर चुका था। दूसरी ओर, तथाकथित अश्लीलता का आरोप लगाकर कई शुद्धतावादी प्रकाशकों ने इसे छापने से इनकार कर दिया। कुछ उदार प्रकाशक इसे इस शर्त पर छापने को तैयार हो गए कि वैद इसमें वांछित संशोधन और सुधार कर लें। लेकिन वैद इसके लिए राजी नहीं हुए क्योंकि तब भी वे सेंसरशिप के विरुद्ध थे और अब भी लेखकीय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्षधर हैं। 'भूमिगत' उपस्थिति के बावजूद *बिमल उर्फ़...* का प्रकाशन रुका रहा। आख़िरकार, पहली बार यह हैदराबाद से प्रकाशित होने वाले हिन्दी के श्रेष्ठ साहित्य पत्र *कल्पना* में प्रकाशित हुआ।

तब से लेकर आज तक यह उपन्यास अन्य दो प्रकाशकों के यहाँ से प्रकाशित हो चुका है और हिन्दी पाठकों में लोकप्रिय होकर और स्वयं लेखक द्वारा अंग्रेज़ी में दो खण्डों में अनूदित *बिमल इन बोग* अंग्रेज़ी पढ़ने वाले पाठकों के लिए भी उपलब्ध है। ज़ाहिर है इस कृति का आलोचकों ने बड़े कड़े तेवर के साथ अन्वय-परीक्षण किया था और पाया कि *पूर्व दीप्ति* (Flash back) और चेतना प्रवाह (Stream of consciousness) के विलक्षण विनियोग के नाते भी यह कृति हिन्दी की एक अनूठी रचना है जिसमें लेखक ने भाषाई बानगी, लहजे और एक नये मुहावरे की तलाश की है।

कथाशिल्पी वैद अपने कथ्य को, सामाजिक और व्यक्तिगत संदर्भों को, आहिस्ता-आहिस्ता परत-दर-परत खोलते हैं और फिर दूसरे सिरे से तहाते हैं। *नसरीन, काला कोलाज, दूसरा न कोई,*

दर्द ला दवा और *गुज़रा हुआ ज़माना* जैसी कृतियाँ इसकी साक्षी हैं। भावानुकूल भाषा और वैचारिक ज़मीन तलाशती उनकी समझ, सोच, तकाज़ों और सरोकारों ने मानवीय रिश्तों को खोखला करनेवाली समस्याओं के प्रति उन्हें जोड़े रखा है। प्रस्तुति का यह लयात्मक शिल्प न केवल *बिमल उर्फ़...* में अपने प्रकर्ष पर है बल्कि उनकी परवर्ती कृतियों में भी है।

साहित्यिक-सांस्कृतिक दृष्टि से श्री वैद की उपलब्धियाँ स्पृहणीय रही हैं। मौलिक लेखन के अलावा अध्यापन, शोध, समीक्षा और अनुवाद के क्षेत्र में भी उन्होंने विशिष्ट भूमिका निबाही है। अंग्रेज़ी में *टेक्नीक इन द टेल्स ऑव हेनरी जेम्स* (समीक्षा पुस्तक) के अलावा अंग्रेज़ी में ही *स्टेप्स इन डार्कनेस* (*उसका बचपन*), *बिमल इन बोग* (*बिमल उर्फ़ जायें तो जायें कहाँ*) *डाइंग अलोन* (*दूसरा न कोई* और अन्य दस कहानियाँ) द ब्रोकिन मिरर (*गुज़रा हुआ ज़माना*) और साइलेंस (चुनी हुई कहानियाँ) की उन्होंने स्वयं पुनर्रचना की है। उनकी अनेक रचनाओं के अनुवाद बाङ्ला, उर्दू, गुजराती, तमिल, मलयाळम्, मराठी आदि भारतीय भाषाओं में तथा जर्मन, इतावली, हिसानवी, फ्रांसीसी, नार्वेजियन, स्वीडिश और पोलिश में हो चुके हैं।

कृष्ण बलदेव वैद की नवीनतम औपन्यासिक कृति *नर-नारी* (1996) कथा-साहित्य के आलोचकों के दरवाज़े पर एक ज़ोरदार दस्तक है। जो लोग श्री वैद के रचनाकर्म और लेखकीय आपद्धर्म से परिचित नहीं, उनके सिर पर यह उपन्यास सचमुच हथौड़े की चोट करेगा या उन्हें झिंझोड़कर रख देगा। कहना चाहिए कि उनके धैर्य की परीक्षा ले सकता है। अपने ख़ास लहजे, कलात्मक अदायगी, ज़ुबान की बानगी, लयात्मक ताज़गी और रवानगी के साथ यह कृति आधुनिक समाज की विसंगतियों की एक छिन्न और अराजक पड़ताल है। अपनी चमक-दमक, परिष्कृत रुचि, आधुनिक रहन-सहन तथा आर्थिक सुख, संसाधन और सुरक्षा के बावजूद आज हमारे समाज का एक-एक आदमी कितना रिक्त, एकाकी और अभिशप्त है—यही इसका कथ्य है। दरअसल आज आत्मरति ही व्यक्ति की नियति हो गई है क्योंकि तथाकथित आधुनिक समाज में नारी या नर के तन और मन अब दो अलग-अलग घटक या इकाई हैं। अब वे एक-दूसरे के पूरक या विकल्प नहीं—एक-दूसरे के सर्वथा विरुद्ध खड़े दो क्रूर और विकट ध्रुवान्त हैं। श्री वैद ने इस तनाव या टकराव को भारतीय पारिवारिक मूल्यों और पाश्चात्य, विशेषकर अमरीकी जीवन शैली की नक़ल या तर्ज को ध्यान में रखकर जो प्रश्न और प्रतिप्रश्न उठाए हैं वे कथ्य, संवाद और दृश्यांतर के साथ-साथ लगातार नुकीले होते चले गए हैं। इसका हर पात्र एक-दूसरे के लिए एक जगह हमलावर है तो दूसरी जगह शिकार; हालाँकि रिश्ते में ये आठों पात्र—पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका, माँ-बेटा और भाई-बहन हैं। इसलिए कथानक की चक्करघिन्नी एक परिचित या मोटे तौर पर पारिवारिक दायरे में ही घूमती रहती है। पुरुषशासित समाज व्यवस्था के नाम पर पुरुषों की उच्छृंखलता और नारी मुक्ति के नारे तले मुक्त नारियों के दर्प, दंभ और महत्त्वाकांक्षा का रोचक आख्यान प्रस्तुत करते हुए स्वयं लेखक न केवल द्रष्टा और भोक्ता के तौर पर बल्कि प्रवक्ता के तौर पर उपस्थित है—इसलिए उसकी पसन्द और नापसन्द भी इसमें आड़े-तिरछे शामिल हो गई है।

भोपाल में सर्वश्री अशोक वाजपेयी और बी. राजन के साथ श्री वैद

परिचय

1927 जन्म : जुलाई 27

1942-46 लाहौर एवं रावलपिंडी के कालेजों में अध्ययन

1947 परिवार दिंगा (पंजाब) से विस्थापित, शरणार्थी शिविर में शरण और फिर दिल्ली आगमन

1949 अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए.

अंग्रेज़ी के अध्यापक, डी.ए.वी. कालेज, जलंधर

1950 हंसराज कॉलेज (दिल्ली) में अंग्रेज़ी का अध्यापन

1952 श्रीमती चम्पा से विवाह

1953 रचना (पुत्री) का जन्म

1955 ज्योत्स्ना (पुत्री) का जन्म

1957 *उसका बचपन* (प्रथम उपन्यास) प्रकाशित

1958 स्मिथ-मुंट फुलब्राइट स्कॉलरशिप पर हार्वर्ड युनि. रवाना

उर्वशी (पुत्री) का जन्म

1959 रॉकफ़ेलर फ़ैलोशिप

1960 हार्वर्ड युनि. फ़ैलोशिप

1961 हार्वर्ड से अंग्रेज़ी साहित्य में पी-एच.डी., हंसराज कॉलेज, दिल्ली वापस

1962 पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ में रीडर, जापान यात्रा

1963 *स्टेप्स इन डार्कनेस* (ओरियन प्रेस, न्यूयॉर्क) प्रकाशित

'ट्रेडिशनल एस्थेटिक्स एण्ड मॉडर्न इण्डियन नावेल' विषय पर अमेरिकन एसोसिएशन आव एशिया के वार्षिक सम्मेलन में आलेख प्रस्तुत

1964 *टेक्नीक इन द टेल्स आव हेनरी जेम्स,* हार्वर्ड युनि. प्रेस द्वारा प्रकाशित

1966 अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर, स्टेट युनि. आव न्यूयॉर्क, पोट्सडैम, न्यूयॉर्क

अन्तर्राष्ट्रीय पेन की 34वें अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस, न्यूयॉर्क सिटी में भारतीय शिष्टमंडल के सदस्य

1968 ब्रैण्डिस युनिवर्सिटी में विज़िटिंग प्रोफ़ेसर

1981 आई.आई.टी. दिल्ली में विज़िटिंग प्रोफ़ेसर

1983 भारत वापस

1985 निदेशक, निराला सृजनपीठ, भारत भवन, भोपाल

1987 भारतीय लेखकों के शिष्ट मण्डल के सदस्य के नाते स्वीडन यात्रा

1993 भाषा विभाग, पंजाब द्वारा साहित्य शिरोमणि पुरस्कार से सम्मानित

वर्ष 1967, सर्वश्री रिचर्ड पोइरीर और जेम्स डिकी के साथ पॉट्सडैम, न्यूयॉर्क में श्री वेद

प्रकाशित कृतियाँ

हिन्दी

उपन्यास

उसका बचपन, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद 1957; नया संस्करण, राधाकृष्ण, दिल्ली, 1981; जेबी संस्करण, वाग्देवी, बीकानेर 1997

बिमल उर्फ़ जायें तो जायें कहाँ, कल्पना, हैदराबाद 1974; द्वितीय संस्करण, संभावना, हापुड़ 1982; तृतीय संशोधित संस्करण, नेशनल, दिल्ली 1997

नसरीन, संभावना, हापुड़ 1975

दूसरा न कोई, परिचय, हापुड़ 1978; जेबी संस्करण, वाग्देवी, बीकानेर 1996

दर्द ला दवा, संभावना, हापुड़ 1980

गुज़रा हुआ ज़माना, राधाकृष्ण, दिल्ली 1981; जेबी संस्करण, वाग्देवी, बीकानेर 1997

काला कोलाज, वाग्देवी, बीकानेर 1989

नर नारी, राजपाल, दिल्ली 1996

कहानी संग्रह

बीच का दरवाज़ा, नीलाभ, इलाहाबाद 1963

मेरा दुश्मन, राधाकृष्ण, दिल्ली 1966

दूसरे किनारे से, राधाकृष्ण, दिल्ली 1970

लापता, सिन्धु, दिल्ली 1973

उसके बयान (रामकुमार के रेखाचित्रों के साथ), दिल्ली 1974

मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल, दिल्ली 1978

वो और मैं, प्रभात, दिल्ली 1979

ख़ामोशी, राधाकृष्ण, दिल्ली 1986

आलाप, राधाकृष्ण, दिल्ली 1986

प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल, दिल्ली 1990

लीला, राजपाल, दिल्ली 1993

चर्चित कहानियाँ, सन्मक्, दिल्ली 1995

पिता की परछाइयाँ, नेशनल, दिल्ली 1997

दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताब घर, दिल्ली 1997

अनुवाद

गोडो के इंतज़ार में (*वेटिंग फॉर गोडो* : बैकेट), राधाकृष्ण, दिल्ली 1970

आख़िरी खेल (*एण्डगेम* : बैकेट), राधाकृष्ण, दिल्ली 1971

फेड्रा (*फेड्रे* : रासीन), राधाकृष्ण, दिल्ली 1990

एलिस अजूबों की दुनिया में (*एलिसज़ एडवेंचर्स इन वंडरलैंड*), राजकमल, दिल्ली, 1990

अंग्रेज़ी

(स्वयं लेखक द्वारा अनूदित कथा-साहित्य)

स्टेप्स इन डार्कनेस (उपन्यास : *उसका बचपन*) ओरियन प्रेस, न्यूयॉर्क 1962; पैंगुइन बुक्स, दिल्ली 1995

साइलेंस (कहानी संग्रह) राइटर्स वर्कशॉप, कलकत्ता 1972

बिमल इन बोग (दो खण्डों में, *बिमल उर्फ़ जायें तो जायें कहाँ*) राइटर्स वर्कशॉप, कलकत्ता 1974,

डाइंग अलोन (उपन्यास : *दूसरा न कोई* और अन्य दस कहानियाँ) पैंगुइन, दिल्ली 1992

द ब्रोकिन मिरर (उपन्यास : *गुज़रा हुआ ज़माना*) पैंगुइन, दिल्ली 1994 (चार्ल्स स्वैरो के सहयोग से)

आलोचना

टेक्नीक इन द टेल्स ऑव हेनरी जेम्स, हार्वर्ड युनि. प्रेस, कैम्ब्रिज 1964

सर्वश्री ए.के. रामानुजन, यू. आर. अनन्तमूर्ति, कमलेश और श्रीमती नवनीता देवसेन के साथ श्री वैद